1927G For Contemplation

Samayik Paath in Hindi (1927)

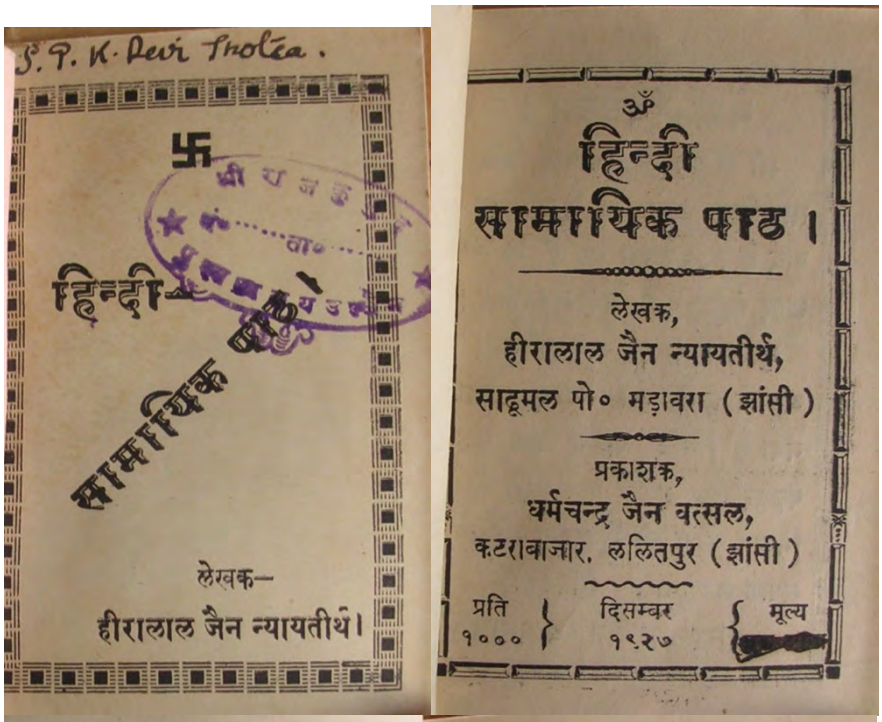

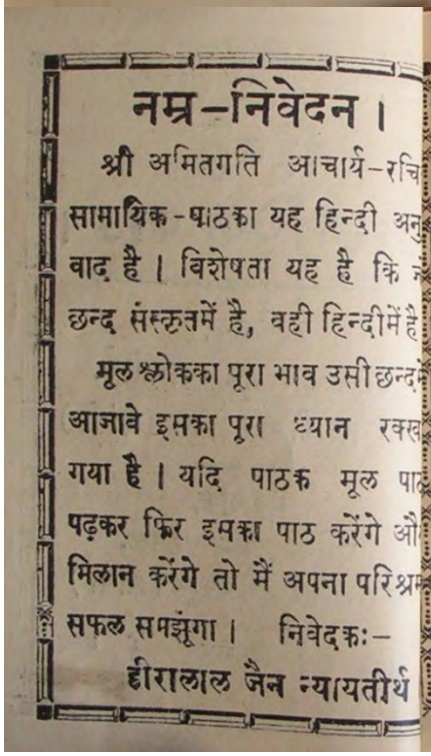

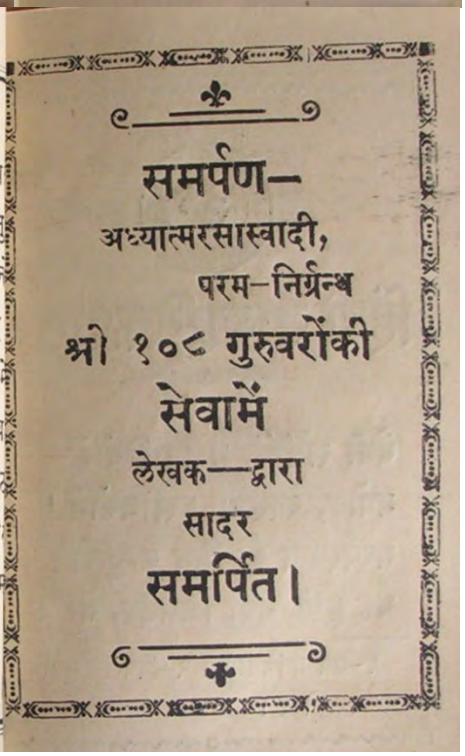

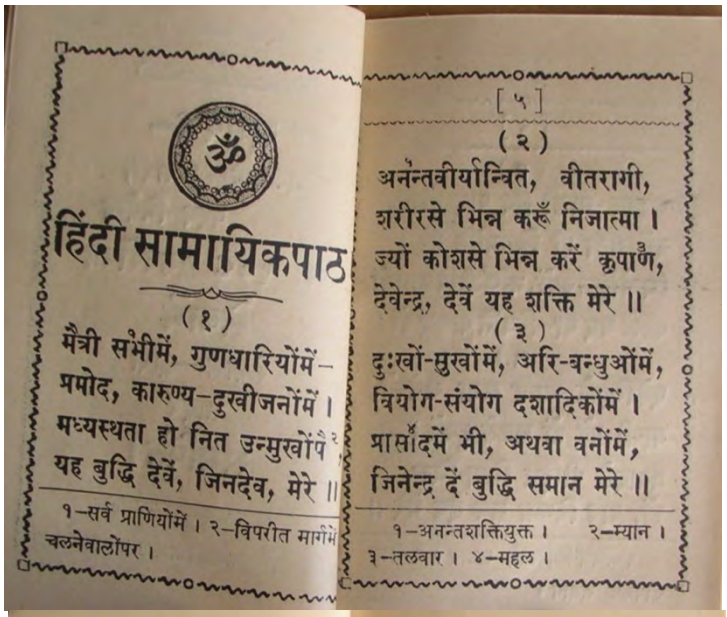

हिंदी सामायिकपाठ

(१)

मैत्री सभीमें[1], गुणधारियोंमें–
प्रमोद, कारुण्य–दुखीजनोंमें ।
मध्यस्थता हो नित उन्मुखोंपै[2],
यह बुद्धि देवें, जिनदेव, मेरे ॥

१–सर्व प्राणियोंमें । २–विपरीत मार्गमें चलनेवालोंपर ।

(२)

अनन्तवीर्यान्वित[1], वीतरागी,
शरीरसे भिन्न करूँ निजात्मा ।
ज्यों कोशसे[2] भिन्न करें कृपाण[3],
देवेन्द्र, देवें यह शक्ति मेरे ॥

(३)

दुःखों-सुखोंमें, अरि-बन्धुओंमें,
वियोग-संयोग दशादिकोंमें ।
प्रासाद[4]में भी, अथवा वनोंमें,
जिनेन्द्र दें बुद्धि समान मेरे ॥

१–अनन्तशक्तियुक्त । २–म्यान । ३–तलवार । ४–महल ।

(४)

अज्ञान–नाशी तुव पाद दोनों,
वसें सदा ही चितमांहि मेरे ।
चित्राङ्कित[1] ज्यों, मणिदीपिका[2] ज्यों,
कीले गए या–स्थिति पागए हों ॥

(५)

एकेन्द्रिको आदि लगा अनेकों,
प्राणी मरे हों चलते हुएमें ।
प्रमादसे पीड़ित छिन्न-भिन्न,
हों, पाप मिथ्या सब देव मेरे ॥

१–चित्र-लिखितके समान । २–रत्न-दीपकके समान ।

(६)

हा ! मुक्ति[1]मार्ग-प्रतिकूल होके,
या, इन्द्रियाधीन विमूढ़ होके ।
चारित्रकी शुद्धि विलुप्त की हो,
तो नाथ! मिथ्या मम पाप होवें ॥

(७)

मनो वचः काय कषाय[2]से मैं,
संसार दुःखप्रद पाप कीने ।
आलोचना वा, कर आप-निन्दा,
नाशूँ, यथा वैद्य विषादि नाशे ॥

१–मोक्षमार्गसे पराङ्मुख होकर । २–मन वचन काय और कषायसे ।

(८)

चारित्रकी शुद्धि विषें कदाचित्
अतिक्रमादि-व्यतिपात होवें।
हों या अनाचार, व्यतिक्रमा वा,
शुद्ध्यर्थ निन्दा अब मैं करूं हूं ॥

(९)

क्षती मनः शुद्धि-विधी अतिक्रमा,
व्यतिक्रमा शीलव्रती विलंघना।
अक्षार्थ-वृति-व्यतिचार संज्ञा,
कहें अनाचार अतिप्रवृत्ति को ॥

१–मानसिक विकार। २–व्रतचर्याका उल्लंघन। ३–विषयोंमें प्रवृत्ति। ४–विषयोंमें अत्यंत प्रवृत्ति।

(१०)

हे नाथ! मात्रा पद हीन वाक्य,
प्रमादसे जो कुछ भी कहा हो।
सरस्वती देवि, क्षमा करें मुझे,
देवें तथा केवल बोधि-लक्ष्मी ॥

(११)

चिन्तामणी जो चित चिन्त्यदाता,
देवें सदा बोधि समाधि शुद्धि।
स्वात्मोपलब्धि शिवसौख्य सिद्धि,
सरस्वती देवि, सदा यही दें ॥

१–केवलज्ञान। २–रत्नत्रय। ३–आत्मलीनता।

(१२)

योगीश ध्याते जिसको सदा ही,
नृपेन्द्र, देवेन्द्र नमें जिसीको।
गाते जिसे वेद पुराण शास्त्र,
वही जगन्नाथ बसे, हृदयमें ॥

(१३)

जो दर्शनज्ञानसुखस्वभावी,
समस्त संसार विकार हारी।
समाधिसे गम्य परात्म संज्ञी,
वही जगन्नाथ बसे हृदयमें ॥

१–द्वादशांग। २–परमात्मा नामधारी।

(१४)

विध्वंसता जो भव दुःखजाल,
निरीक्षता जो जगदन्तराल।
अन्तस्थ जो योगि-निरीक्षणीय,
वही जगन्नाथ बसे हृदयमें ॥

(१५)

जो मुक्तिका मार्ग प्रकाशकारी,
जो जन्म मृत्यु व्यसनादि हारी।
त्रिलोक–लोकी पर निष्कलङ्क,
वही जगन्नाथ, बसे हृदयमें ॥

१–अन्तरङ्गमें प्राप्त। २–योगियोंद्वारा देखने योग्य है।

(१६)

स्वाधीन कीने सब जीवमात्र,
वे रागद्वेषादि रहे न जिसके।
अतीन्द्रिय-ज्ञानमयी सदा जो,
वही जगन्नाथ, बसे हृदयमें ॥

(१७)

जो सर्व-व्यापी[1] निज ज्ञान द्वारा,
सदा सुखी बुद्ध विनष्ट-कर्मा।
ध्याया विनाशे सबके विकार,
वही जगन्नाथ बसे हृदयमें ॥

१-जो ज्ञानकी अपेक्षा सर्वव्यापी है।

(१८)

स्पृष्ट[1] होता न कलङ्क-पङ्कसे,
जो, ध्वान्त[2]-द्वारा नित सूर्यकी ज्यों।
निरञ्जनो, एक[3] अनेक[4] रूप,
मैं प्राप्त होता शरणे उसीकी।

(१९)

जिनेन्द्र, तू लौकिक सूर्यहीन,
प्रकाश तौ भी तिहुँ लोक तेरा।
स्वात्मस्थ हो जो नित ज्ञानरूपी,
मैं प्राप्त होता-शरणे उसीकी ॥

१-स्पर्श किया हुआ २-अन्धकार। ३-द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा। ४-पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा।

(२०)

हां, देखके शान्त स्वरूप तेरा,
देता दिखाई यह विश्व सारा।
शुद्धात्म जो आदि सु अन्त हीन,
मैं प्राप्त होता शरणे उसीकी ॥

(२१)

नाशे सभी काम विकार मूर्च्छा,
विषाद निद्रा भय शोक चिन्ता।
दावाग्नि ज्यों वृक्ष समूह नाशे,
लेता सहारा उस देवका मैं ॥

(२२)

माना नहीं आसन ध्यानका है,
धरा, कुशा, डाभ, तृष्णादिको भी।
हे नाथ, नाशे, विषयादि जिसने,
कहा वही संस्तर शुद्ध तूने ॥

(२३)

न सांथरा साधन है समाधिका,
न लोक पूजा न च संघ एकता।
संसारकी छोड़ कुवासनाएँ,
अध्यात्ममें लीन रहो सदात्मन[1] !

१-आत्मस्वरूपमें।

(२४)

बाह्यार्थ[1] मेरे कुछ भी नहीं हैं,
ममी, कभी भी, उनका नहीं हूं।
यों चिंतके बाह्य विचार छोड़ो,
मुक्त्यर्थ[2] स्वात्मस्थित हो सदा ही।

(२५)

तू, आपमें आप समस्तदर्शी,
तू, दर्शन ज्ञान सुवृत्तधारी।
एकाग्र हो चित्त जहां कहीं भी,
पाता वहीं साधु, समाधि नाम॥

१–परपदार्थ। २–मोक्षप्राप्तिके लिए।

(२६)

आत्मा सदा है, अविनाशि मेरा,
सर्वाङ्ग सिद्धान्तस्वरूप ज्ञाता।
हैं सर्व ही अर्थ वहि स्वरूप,
विभाव हैं कर्म स्वरूप जन्म॥

(२७)

शरीरसे भी जिसका न ऐक्य है,
कहां कथा है फिर पुत्र मित्रकी।
पृथक् करो चर्म शरीर पिंडसे,
निराश्रयी[1] रोम कहां रहेंगे॥

१–आश्रय विना।

(२८)

संसारमें दुःख सदा अनेको,
पाता यही जीव शरीर-योगमें।
जो चाहते निर्वृति[1] सौख्यकारी
तो ये जगज्जाल समस्त छोड़ो

(२९

संसार कांतार[2] निपातवाले,
विकल्प दुःखप्रद सर्व छोड़ो।
समस्तसे भिन्न लखो निजात्मा,
हो लीन आत्मन, परमात्म-तत्वमें

१–मुक्ति। २–जंगल।

(३०)

स्वयं किये कर्म सुपूर्व कालमें,
भला बुरा वे फल नित्य देते।
हां, ईश्वर-प्रेरित[1] कर्म भोगवे–
स्वकीय हों कर्म निरर्थ जो किए॥

(३१)

स्वकीय पूर्वार्जित कर्म छोड़के,
कोई किसीको कुछ है न देता।
द्वितीय-दाता यह भाव मिथ्या,
छोड़ो यही भाव कुभाव सारे॥

१–ईश्वरसे प्रेरणा किया हुआ।

(३२)

जो परमात्माऽमितगति[1] पूजा,
सर्व विविक्त सुखी गत-दोषा ।
नित्य सु ध्याया मनमें जिसने,
विभवमयी पंचमगति पाई ॥

(३३)

इम बत्तीस सुवृत्तोंसे जो,
एक चित्त परमात्म जपे ।
स्वात्म-स्वरूप प्राप्ति कर फिर वह
मोक्ष सौख्यको नियत लहे ॥

१-अपार ज्ञानवाले गणधरादिकोंने अथवा अमितगति नामक आचार्यने पूजा।